अध्याय 19

अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करना

लैव्यव्यवस्था 19 में, यहोवा ने अपने लोगों को उसके समान "पवित्र बनने" के लिए क्या करना चाहिए के बारे में शिक्षा देना जारी रखा (19:2)। उनको यह बताया गया था कि वे अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखें (19:18)। इसलिए, अब यहोवा का ध्यान यौन संबंध से हटकर सामाजिक संबंध की ओर फिरा। पवित्र होने के द्वारा यहोवा को प्रसन्न करने के लिए, इस्राएलियों को दूसरों के साथ उचित व्यवहार करना चाहिए था।

यहोवा ने दूसरे मामलों का भी ध्यान रखा, जिसमें धार्मिक रीति रिवाज और वर्जित मूर्तिपूजा जैसे विषय सम्मिलित है। वस्तुतः, कई शीर्षक वर्णित किए गए हैं जिसको कभी-कभी टीकाकारों ने "विविध व्यवस्था" या "विविध विधियाँ" करके संबोधित किया है।

फिर भी, यह संभव है कि इन सभी "विविध विधियों" को एक ही शीर्षक से संबंधित किया जा सकता हैः "अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखना।" जब कोई परमेश्वर से प्रेम करता है और उसकी आज्ञा मानता है, तो वह एक अच्छा व्यक्ति और अच्छा पड़ोसी होगा। यदि यह वक्तव्य माना जाए, तो इन विधियाँ को अपने पड़ोसी से प्रेम या दूसरों का भला करने से जोड़ा जा सकता है।

परिचय: व्यवस्था देने वाला (19:1, 2)

[1]फिर यहोवा ने मूसा से कहा, [2]"इस्राएलियों की सारी मण्डली से कह कि तुम पवित्र बने रहो; क्योंकि मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा पवित्र हूँ।"

पिछली अनुभाग के समान, यह घोषणा करते हुए कि व्यवस्था किसकी ओर से आया है, अध्याय प्रारंभ होता है।

आयतें 1, 2. ये व्यवस्था मध्य पूर्व संस्कृति से उभरकर नहीं आया है जहाँ से इसे प्राचीन इस्राएल के पूर्वजों ने अपनाया और सुविधानुसार बदला होगा, या फिर रब्बियों या शास्त्रियों ने अपनाया होगा। बल्कि, यह तो तब उन्हें दिया गया

होगा जब **यहोवा ने मूसा से कहा**, जिसको इसे **इस्राएल** के लोगों को देने की जिम्मेदारी सौंपी गई थी।

इस समय परमेश्वर का संदेश उसके लोगों के लिए उसके उद्देश्यों को दोहराते हुए आरंभ होता हैः वह उन्हें अपने समान, जैसा वह **पवित्र** है, वैसे ही **पवित्र देखना** चाहता है (देखें 11:44, 45)। इसलिए, जो व्यवस्था यहाँ दी गई है वह ऐसा था जो इस्राएल को एक पवित्र देश बनने में, जिसके लिए वे बुलाए गए थे, सहायता करेगा। परमेश्वर ने व्यवस्था के इस अनुभाग का परिचय का सारांश अपने आपको "पवित्र" घोषित करके समाप्त किया है। परमेश्वर, पवित्रता का अभिप्राय और पवित्रता का नमूना है।

इस अध्याय को तीन भागों में बांटा जा सकता हैः सभी आज्ञाओं को मानना (19:3-10), अपने पड़ोसी से प्रेम करना (19:11-18), और देश की विशिष्टता बनाए रखना (19:19-37)।[1]

सभी आज्ञा मानना (19:3-10)

3"तुम अपनी-अपनी माता और अपने-अपने पिता का भय मानना, और मेरे विश्राम दिनों को मानना: मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ। 4तुम मूरतों की ओर न फिरना, और देवताओं की प्रतिमाएँ ढालकर न बना लेना; मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ। 5जब तुम यहोवा के लिये मेलबलि करो, तब ऐसा बलिदान करना जिससे मैं तुम से प्रसन्न हो जाऊँ। 6उसका मांस बलिदान के दिन और दूसरे दिन खाया जाए, परन्तु तीसरे दिन तक जो रह जाए वह आग में जला दिया जाए। 7यदि उसमें से कुछ भी तीसरे दिन खाया जाए, तो यह घृणित ठहरेगा, और ग्रहण न किया जाएगा, 8और उसका खानेवाला यहोवा के पवित्र पदार्थ को अपवित्र ठहराता है, इसलिये उसको अपने अधर्म का भार स्वयं उठाना पड़ेगा; और वह प्राणी अपने लोगों में से नष्ट किया जाएगा। 9फिर जब तुम अपने देश के खेत काटो तब अपने खेत के कोने-कोने तक पूरा न काटना, और काटे हुए खेत की गिरी पड़ी बालों को न चुनना। 10और अपनी दाख की बारी का दाना-दाना न तोड़ लेना, और अपनी दाख की बारी के झड़े हुए अंगूरों को न बटोरना; उन्हें दीन और परदेशी लोगों के लिये छोड़ देना; मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ।"

यद्यपि व्यवस्था का प्रथम समूह कई विषयों को संबोधित करता है, यह परमेश्वर द्वारा दिए गए सभी व्यवस्था को मानने की आवश्यकता पर ज़ोर देता है। प्रत्येक इस्राएली को परमेश्वर के सभी आज्ञाओं को मानना था, चाहे उस व्यवस्था का संबंध परमेश्वर के साथ हो या फिर दूसरे लोगों के साथ।

आयत 3. परमेश्वर ने अपनी व्यवस्था का प्रस्तुतिकरण दो प्रसिद्ध व्यवस्था के साथ प्रारंभ किया। किसी को भी **अपने माता और अपने पिता का भय मानना** और **विश्रामदिन को पवित्र मानना था** जो दस आज्ञाओं में से दो आज्ञा है (निर्गमन 20:8, 12; व्यव. 5:12, 16)। केवल ये दोनों आज्ञाएं ही यहाँ उधृत नहीं हैं बल्कि

लगभग सभी दस आज्ञाओं को यहाँ दोहराया गया है। परमेश्वर के पवित्र लोग होने के लिए, इस्राएली लोगों को आज्ञाकारी होना था, उन्हें वाचा का प्राथमिक अनुबंध जो उसने इस्राएल के साथ बांधा था, मानना था (देखें निर्गमन 19; 20)। इस पूरे अध्याय में परमेश्वर की व्यवस्था का अधिकार **"मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ"** और "मैं यहोवा हूँ" जैसे वक्तव्यों के द्वारा ज़ोर दिया गया है (19:3, 4, 10, 12, 14, 16, 18, 25, 28, 30, 31, 32, 34, 36, 37)।

आयत 4. दस आज्ञाओं में से दो और आज्ञाओं को यहाँ दोहराया गया हैः **"तुम मूरतों की ओर न फिरना,"** "तू मुझे छोड़ दूसरे को ईश्वर करके न मानना" के समतुल्य है (निर्गमन 20:3), और **"देवताओं की प्रतिमाएँ ढालकर न बना लेना"** "न किसी की प्रतिमा बनाना" के समतुल्य है (निर्गमन 20:4; देखें लैव्य. 26:1)। ये मूसा की व्यवस्था की सबसे प्राथमिक अर्हता थी; जब तक इस्राएल के लोग केवल परमेश्वर की ही आराधना नहीं करेंगे, तब तक उस देश के लोग परमेश्वर के वाचा के लोग नहीं कहलाऐंगे। वस्तुतः, इस्राएली लोग लगातार दूसरे ईश्वर की उपासना की परीक्षा में पड़े; और जब उन्होंने ऐसा किया, तो परमेश्वर ने उनको नित्य दण्ड दिया।

आयतें 5-8. उन्नीसवें अध्याय की पाँचवीं आयत में विषय अचानक परिवर्तित होता है, जहाँ **मेलबलि** के बारे में यहोवा का निर्देश पाया जाता है। इस अनुच्छेद में पाई जानेवाली व्यवस्था, पहले दिए नियमों की पुनरावृति करता है (3:1; 7:15-18), जिसे मेलबलि का बलिदान करने वाले के भाग को कब **खाया जाना** चाहिए से संबंधित किया गया है। इसको **स्वीकार किए जाने** के लिए बलिदान को **उसी दिन** खाया जाना चाहिए था या उसके **अगले दिन** खाया जाना चाहिए था। यदि मांस **तीसरे दिन** तक बच जाता है तो उसको **आग में जला दिया जाना** चाहिए था (19:6)। यदि मांस को **तीसरे दिन** खाया जाता था तो यह **घृणित** ठहरता था (19:7)। यदि किसी ने इस व्यवस्था का उल्लंघन किया तो वह जो **पवित्र** है उसकी निंदा करता है, उसको **अपने लोगों में से नष्ट किया जाएगा** (19:8)।

इस व्यवस्था की आवश्यकता क्यों थी? हो सकता है कि कुछ इस्राएलियों ने परमेश्वर द्वारा पहले दिए गए व्यवस्था को मानने के प्रति उदासीनता दिखाई हो। कुछ मांस बचाकर रखना और दूसरे दिन के बाद इसको खाना, परमेश्वर की व्यवस्था का सम्मान नहीं करना है और यह परमेश्वर पर उनका भरोसा न होना दिखाता है। यह ऐसा कहने जैसा है, "मुझे विश्वास नहीं है कि परमेश्वर मेरी आवश्यकता की पूर्ति तीसरे दिन भी कर सकता है, इसलिए मैं उसकी आज्ञा को अनदेखा करूँगा और मैं स्वयं अपने लिए कुछ खाने पीने की चीज़ों का प्रावधान कर लूँगा।"

इसके साथ ही, यह संभव है कि इस आज्ञा में "अपने पड़ोसी से प्रेम रख" का प्रसंग भी है। यह परमेश्वर के लोगों को मेलबलि बलिदान करने के बारे में स्मरण दिलाता है। इन बलिदानों के द्वारा यहोवा का भय माना जाता था और उसके याजकों को भोजन कराया जाता था; इससे बढ़कर, जो व्यक्ति बलिदान कर रहा है, उसके परिवार के सदस्य और ईष्ट मित्रगणों को मेलबलि के भोजन में भाग लेने

का सौभाग्य मिलता था। इसलिए, यह व्यवस्था अपना भोजन दूसरों के साथ बांटकर उनके प्रति प्रेम प्रकट करने का अवसर प्रदान करता था।

आयतें 9, 10. ये आयतें एक इस्राएली किसान को अपने फसल की कटनी इस प्रकार से कटनी करने का निर्देश देता है कि वह दरिद्रों के लिए कुछ भोजन छोड़ सके। जब वह अपने फसल की कटनी करता था तो उसको **खेत के कोने तक फसल नहीं काटना था**, और न ही उसको कटनी की गई खेत की **गिरी बालें चुनना** था जो कटनी करने वाले के कार्य समाप्त होने के बाद खेत में रह जाता था (देखें 23:22)। इसके साथ ही, उसको **दाख की बारी** का दाना-दाना नहीं **तोड़ना** था - अर्थात् दोबारा दाख की बारी में जाकर सभी अंगूर नहीं तोड़ने थे। यह प्रतिबंध तब भी लागू होता है, चाहे अंगूर लगे हों या फिर भूमि पर **गिर** गये हों। खेत में बटोरना और दाख की बारी में कुछ बचा रहना, **दीन और परदेशी लोगों के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए था**।[2] "दीन" उसके लिए प्रयोग किया गया है जो दरिद्र थे। "परदेशी," गैर इस्राएली थे जो परमेश्वर के लोगों के बीच में रहते थे। जॉर्ज ए. एफ. नाईट ने कहा, "इस अनुच्छेद का अर्थ यह नहीं है कि आपको केवल दो विचारपूर्ण वर्णित कार्य ही करना है। इसका यह अर्थ है कि ये दो विशेष कार्य आपको हर समय अपने जीवन के हर पहलू में करने हैं।"[3]

एक किसान या एक व्यापारी को यह आज्ञा अजीब लगेगी। कृषि या व्यापार में, एक व्यक्ति को यह बताया जाता है कि जो उन्होंने लागत में जो लगाया है, जितना जल्दी हो सके वह उसका मुनाफा कमाए। यदि एक किसान प्रति एकड़ भूमि से कुछ अतिरिक्त प्राप्त करता है तो वह अवसर का लाभ उठाता है। यद्यपि, इस व्यवस्था में, यहोवा ने किसान को निर्देशित किया कि वह अपनी फसल की थोड़ी कटनी करे और शेष दरिद्रों के लिए छोड़ दे। कोई ऐसा क्यों करेगा? इसके लिए अध्याय 19 में दो कारण बताए गए हैं: (1) यहोवा परमेश्वर है (और उसके लोगों को उसको प्रेम करना था और उसकी आज्ञा माननी थी), और (2) उनको अपने पड़ोसी को अपने समान प्रेम करना था। इस्राएलियों को दरिद्रों की अच्छी तरह देखभाल करनी थी।

जाति भाइयों से प्रेम रखना (19:11-18)

[11]"तुम चोरी न करना, और एक दूसरे से न तो कपट करना, और न झूठ बोलना। [12]तुम मेरे नाम की झूठी शपथ खाके अपने परमेश्वर का नाम अपवित्र न ठहराना; मैं यहोवा हूँ। [13]एक दूसरे पर अन्धेर न करना, और न एक दूसरे को लूट लेना। मज़दूर की मज़दूरी तेरे पास सारी रात सबेरे तक न रहने पाए। [14]बहिरे को शाप न देना, और न अंधे के आगे ठोकर रखना; और अपने परमेश्वर का भय मानना; मैं यहोवा हूँ। [15]न्याय में कुटिलता न करना; और न तो कंगाल का पक्ष करना और न बड़े मनुष्यों का मुँह देखा विचार करना; एक दूसरे का न्याय धर्म से करना। [16]लुतरा बनके अपने लोगों में न फिरा करना, और एक दूसरे का लहू बहाने की युक्तियाँ न बाँधना; मैं यहोवा हूँ। [17]अपने मन में एक दूसरे के प्रति बैर न

रखना; अपने पड़ोसी को अवश्य डाँटना, नहीं तो उसके पाप का भार तुझ को उठाना पड़ेगा। [18]पलटा न लेना, और न अपने जाति भाइयों से बैर रखना, परन्तु एक दूसरे से अपने ही समान प्रेम रखना; मैं यहोवा हूँ।"

अध्याय 19 के दूसरे अनुभाग में वर्णित व्यवस्था में, यहोवा ने उन व्यवस्थाओं पर अधिक ध्यान दिया है जिसमें एक दूसरे के साथ संबंध के बारे में बताया गया है।

आयत 11. यहोवा का ध्यान उन दस आज्ञाओं की ओर फिर से गया जो उसने सिनै पर्वत पर दी थी। सर्वप्रथम, उसने लोगों को स्मरण दिलाया कि उन्हें **चोरी नहीं करनी थी** या दूसरे से **कपट नहीं करना** था। यह आठवें और नौवें आज्ञा की पुनरावृति थीः "तू चोरी न करना" और "तू अपने पड़ोसी के विरूद्ध झूठी साक्षी न देना" (निर्गमन 20:15, 16)। ये व्यवस्थाएं दूसरों को प्रेम करने के प्रति नकारात्मक ("न") दिशा निर्देश पर ज़ोर देता है। यदि कोई अपने पड़ोसी से प्रेम करता है तो कुछ ऐसी बातें है जो वह नहीं करेगाः जिनसे वह प्रेम करता है वह उनकी कुछ चोरी नहीं करेगा या उनसे झूठ नहीं बोलेगा।

आयत 12. तब **यहोवा** ने दस आज्ञा में से एक और आज्ञा दोहराया, उसने इस्राएलियों को **उसके नाम से झूठी शपथ खाने** के लिए मना किया। यह प्रतिबंध तीसरी आज्ञा से जुड़ा हुआ हैः "तू अपने परमेश्वर का नाम व्यर्थ न लेना" (निर्गमन 20:7)। जबकि इस व्यवस्था ने श्राप देने को अवैधानिक ठहराया, इसका प्राथमिक उद्देश्य परमेश्वर के लोगों को यहोवा के नाम में झूठी शपथ खाने से रोकना था।[4] झूठ बोलने के लिए परमेश्वर के नाम का प्रयोग करके **उसके नाम को अपवित्र ठहराना था**। इस्राएल में यह बड़ा पाप माना जाता था क्योंकि व्यवस्था स्वयं यहोवा ने दी थी। इस आज्ञा को मानने के द्वारा प्रेम का प्रगटीकरण करना थाः एक व्यक्ति किसी को, जिससे वह प्रेम करता है, झूठी शपथ खाकर जानबूझकर गलत दिशा निर्देशित नहीं करेगा।

आयत 13. यहोवा ने कहा कि उसके लोग दूसरों पर **अन्धेर न** करें, उन्हें न **लूटें**, या **मजदूर की मजदूरी सबेरे तक न रखें**। दस आज्ञा में से एक आज्ञा यह है कि चोरी करना गलत है, इसलिए यदि किसी व्यक्ति ने अपने पड़ोसी को लूटा है तो उसने उस आज्ञा को तोड़ दिया है। फिर भी, यह आज्ञा सामान्य चोरी के विषय में अधिक ज़ोर नहीं डालता है, जैसे कि चुपचाप किसी के घर में घुसकर दूसरों की चीज़ों को चुराना। बल्कि, यह तो अपना बल प्रयोग कर दूसरों पर अन्धेर करके उनको लूटना था। आज के समान तब भी धनाढ्य लोग (अनैतिक) कानून का सहारा लेकर दरिद्रों को लूट लेते थे। ऐसा करने का एक तरीका यह था कि वह मज़दूर को उसकी मज़दूरी देने में विलंब करते थे। यदि एक धनी व्यक्ति एक मज़दूर की मज़दूरी को रात भर रोक लेते थे, तो मज़दूर और उसके परिवार वालों को दुःख उठाना पड़ता था, लेकिन धनी व्यक्ति कुछ और घण्टे आनंद मना सकता था या उस धन को जिसे उसने दरिद्र व्यक्ति को देना था, संभवतः व्यापार पर लगा सकता था। मज़दूर की मज़दूरी रोककर धनी व्यक्ति उस पर अन्धेर करता था और उसे लूटता

था।

आयत 14. बहरे को शाप न देना और **न ही अन्धे के आगे ठोकर रखना**, मना करके, परमेश्वर ने यह दर्शाया कि उनको दिव्यांगों से अनावश्यक लाभ नहीं उठाना था। फिर भी, यह महत्वपूर्ण बात है कि इस आज्ञा ने दिव्यांगों के विरूद्ध हिंसा, या उनसे धन लेने के लिए मना नहीं किया है (हालांकि अन्य व्यवस्था ऐसा करने को रोकता है)। यह दूसरों को इस प्रकार की अपंगता को हल्के में लेने के लिए रोकता है। इस्राएलियों को उनको तुच्छ नहीं समझना था, सामान्य मनुष्य से कम नहीं आंकना था, या फिर उन्हें दूसरों के मनोरंजन का साधन नहीं समझना था। क्लायड एम. वुड ने उचित ही कहा हैः

> क्योंकि एक बहरा न सुनने की क्षमता के कारण घुड़की रोक सकता था, न ही एक अंधा न देखने की क्षमता के कारण बाधाएं हटा सकता था, इसलिए ऐसे लोग निर्दयी मजाक और द्वेषपूर्ण मनबहलाव के कारण बन जाते थे। परंतु, यहोवा के लोगों को निर्बलों का दुरुपयोग नहीं करना था बल्कि उनको उनके प्रति यहोवा के भय के कारण सकारात्मक व्यवहार अपनाना था, जो बलहीनों का बदला लेता था और उनकी सहायता करता था।[5]

पड़ोसी के प्रति प्रेम की यह मांग है कि एक व्यक्ति को दिव्यांगों के प्रति सम्मान दिखाना था और उनकी देखभाल करनी थी।

आयत 15. यहोवा ने यह बताया कि इस्राएलियों को **न्याय** कैसे चुकाना था। उस समय की न्याय व्यवस्था के अनुसार मामले की सुनवाई नगर के फाटक में की जाती थी। वहाँ नगर के लोग न्याय के लिए बैठते थे, चाहे मामला किसी के धोखाधड़ी का हो, जिसकी शिकायत एक नागरिक ने दूसरे नागरिक के प्रति की हो, या फिर सार्वजनिक मामले की न्याय की बात हो, नगर के लोग फाटक पर एकत्रित होकर न्याय किया करते थे। किसी भी इस्राएली व्यक्ति को ऐसे न्याय की सुनवाई के लिए बुलाया जा सकता था। जो लोग न्याय चुकाने के लिए बैठते थे उनको यहोवा का यह निर्देश था कि वे न्यायी व भेदभाव रहित हों।

पक्षपात अनुचित घोषित किया गया था। इस्राएलियों को **न तो कंगाल का पक्ष लेना था और न ही बड़े मनुष्यों का मुँहदेखा विचार करना था**। एक इस्राएली को पूर्णतया पक्षपात रहित होना था, उसको अपना निर्णय अपनी भावननाओं, या पसंद या नापसंद के आधार पर नहीं सुनाना था बल्कि मामले के तथ्यों के आधार पर उसको अपना निर्णय सुनाना था।

आयत 16. एक और बुराई जिससे परमेश्वर के लोगों को बच के रहना था वह है लुतराई करना। एक इस्राएली व्यक्ति को अपने **लोगों में लुतराई नहीं करना** था। एक व्यक्ति जो "लुतराई" करता है वह दूसरों की बुराई करता फिरता है, चाहे उसके बातों में सच्चाई हो या फिर न हो। वह चुगली करने वाला या झूठी कथा गढ़ने वाला है जो दूसरों की सदैव बुराई करता रहता है। यह व्यवस्था यह बताती है कि एक इस्राएली व्यक्ति को ऐसा नहीं होना चाहिए था। यह स्पष्ट रूप से यह बताती है कि कोई दूसरों को तब तक प्रेम नहीं कर सकता है जब तक वह उनकी

लुतराई करता फिरता है।

सोलहवीं आयत का दूसरा भाग यह कहता है, **"एक दूसरे का लहू बहाने की युक्तियाँ न बाँधना।"** स्पष्टतया, इसका यह अर्थ है कि एक इस्राएली को कोई भी ऐसा कार्य[6] (या निष्क्रियता) नहीं करना था जो उसके पड़ोसी के अकारण मृत्यु का कारण बने। NIV में इसका अनुवाद इस प्रकार किया गया है, "कोई ऐसा कार्य नहीं करना जिससे तुम्हारे पड़ोसी को जान का खतरा हो।" यह व्यवस्था "जब पड़ोसी का *जीवन* (... इब्रानी में 'लहू') खतरे में होता है तो जो लोग सुस्त या निष्क्रिय खड़े रहते हैं, और उनका प्राण बचाने के लिए वे कुछ भी नहीं करते हैं,"[7] की ओर संकेत करता है। एक दूसरा सुझाव यह है कि इन शब्दों का अर्थ किसी के जीवन को झूठा दोषारोपण कर खतरे में डालना या उसको बचाने के लिए कोई कार्य न करना है। इस वाक्यांश का व्याख्या ऐसा भी किया जा सकता है कि किसी को उसके पड़ोसी के मृत्यु के द्वारा लाभ उठाने का प्रयास नहीं करना चाहिए।[8] जबकि यह आयत किसी की हत्या करने के लिए नहीं कहता है लेकिन इसका आशय उसके हत्या के तुल्य है। परिणामस्वरूप, इस व्यवस्था को छटे आज्ञा के समान्तर समझा जा सकता थाः "तू हत्या न करना" (निर्गमन 20:13)।

आयत 17. अगला, यहोवा ने कहा, **"अपने मन में एक दूसरे के प्रति** [शब्दशः "भाई"] **बैर न रखना।"** यह निर्देश यह सुनिश्चित करता है कि मूसा की व्यवस्था न केवल अनुचित कार्य करने से रोकता है बल्कि यह अनुचित विचारों को मन में लाने से भी रोकता है। फिर भी, अपने पड़ोसी से घृणा न करने का अर्थ उसको अनुशासित करने के विचार को अपने मन से हटाना नहीं है। आयत यह कहती है कि कोई भी **अपने पड़ोसी को डांट सकता है** लेकिन उसको यह इस प्रकार करना है कि **उसको उसके पाप का भार उठाना न पड़े**।

इसमें जो परिस्थिति दर्शायी गई है उससे ऐसा प्रतीत होता है कि किसी के पड़ोसी ने उसके विरूद्ध कुछ गलत कार्य किया है। इसके लिए क्या उचित प्रत्युत्तर हो सकता है? उससे घृणा करने के बजाए, खेदित पड़ोसी को सुधारने के लिए "डांटना" चाहिए; लेकिन उसको यह इस प्रकार करना चाहिए ताकि वह उसके पापों का दोषी न ठहरे। उसको अपने पड़ोसी को श्राप देने से बचना चाहिए या उसको उसकी लुतराई नहीं करना चाहिए। निश्चय, उसको अपने पड़ोसी को चोट पहुँचाकर, चाहे शारीरिक हो या फिर आर्थिक, बदला नहीं लेना चाहिए। यदि उसको इनमें से कोई भी कार्य करना हो तो वह "पाप करेगा।" डांटना पाप नहीं होगा; यह अनुचित कार्य करने वाले को उसके अनुचित कार्य और उसे वह कैसे सुधार सकता है, के बारे में बताने के लिए उचित ठहरेगा।

यदि खेदित व्यक्ति इस प्रकार व्यवहार करेगा तो यह दोषी को प्रेम दिखाने जैसा है, और संभवतः यह दोनों के बीच भिन्नता को दूर करेगा। पड़ोसी से प्रेम करने का तात्पर्य उसको मन में घृणा करने से बचना है, भले ही उसके पड़ोसी ने उसके साथ अनुचित कार्य क्यों न किया हो।

आयत 18. इस आयत में, यह अनुच्छेद इसके चरम सीमा पर पहुँचता है। यह कहने के पश्चात् कि एक इस्राएली को कभी भी **अपने जाति भाइयों** से बैर नहीं

रखना है, दूसरों से अपने समान प्रेम करने के बारे में एक विशिष्ट आज्ञा जोड़ता है। तब यह इस व्यवस्था के स्रोत और इसको लागू करने वाले के नाम के साथ समाप्त होता है: **यहोवा!** इस आयत की कई शब्दांश पर टिप्पणी करने की आवश्यकता है।

"पलटा न लेना, और न अपने जाति भाइयों से बैर रखना।" मूसा की व्यवस्था, नये नियम से बढ़कर, पलटा लेने की अनुमति नहीं देता है। जो भी हो "आँख के बदले आँख" न्याय को प्रदर्शित करता है, इसका तात्पर्य यह नहीं है कि व्यवस्था के आधीन एक व्यक्ति विशेष को अपने लिए पलटा लेना चाहिए।[9]

"एक दूसरे से अपने ही समान प्रेम रखना।" कुछ विद्वानों का यह सुझाव है कि इस संदर्भ में "पड़ोसी" केवल इस्राएल के जाति भाई के लिए ही संबोधित किया गया है। यदि इस आयत में यह सत्य भी है तो 19:34 में भी परदेशी या गैर इस्राएलियों से संबंधित बातों में यही आज्ञा दिया गया है। परिणामस्वरूप, एक पाठक को यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि परमेश्वर ने सभी इस्राएलियों को अपने समान सब लोगों (इस्राएलियों और परदेशियों) को प्रेम करने का आदेश दिया।

"अपने ही समान।" इस्राएलियों के लिए परमेश्वर की इच्छा कि वे एक दूसरे से प्रेम करें, दिखाने के लिए यह वाक्यांश एक कुँजी के समान है। आपसी संबंधों को बनाए रखने के लिए अगिनत विशिष्ट व्यवस्थाएं दी गई है। यद्यपि, यदि किसी विशेष मामले का ध्यान रखने के लिए कोई व्यवस्था न हो, कि किसी विशेष परिस्थिति में पड़ोसी के साथ क्या किया जाना चाहिए, तो ऐसे अवसर पर इस्राएलियों को "मुझे क्या करना चाहिए?" जैसे प्रश्न का उत्तर देना मालूम था। उसको अपने आपको दूसरे व्यक्ति के स्थान पर रखना था और इस पर विचार करना था कि उसके साथ कैसे व्यवहार किया जाना चाहिए। जो व्यक्ति दूसरे से प्रेम करता है, वह वही करेगा जो वह दूसरों से अपने लिए चाहता है। वह केवल यही कहेगा, जो यीशु ने कहा: "इस कारण जो कुछ तुम चाहते हो कि मनुष्य तुम्हारे साथ करें, तुम भी उनके साथ वैसा ही करो; क्योंकि व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं की शिक्षा यही है" (मत्ती 7:12)।

यहूदियों ने इस आज्ञा की महत्वपूर्णता को समझा; और वैसे ही यीशु ने भी, क्योंकि उसने इसे दूसरी सबसे बड़ी आज्ञा कहा (मत्ती 22:39; मरकुस 12:31)। मसीहियों को दूसरों के साथ संतुलन बनाए रखने के लिए यह उनके लिए प्राथमिक आज्ञा है (रोमियों 13:8, 9; गला. 5:14; याकूब 2:8)। अट्ठारहवीं आयत में सारांश प्रस्तुत किया गया है: परमेश्वर के आज्ञानुसार दूसरे से प्रेम करने के लिए, दूसरे के साथ वैसे ही व्यवहार करना चाहिए जैसा वह चाहता है कि दूसरे उसके साथ व्यवहार करें।

देश की विशिष्टता बनाए रखना (19:19-37)

[19]"तुम मेरी विधियों को निरन्तर मानना। अपने पशुओं को भिन्न जाति के पशुओं से मेल खाने न देना; अपने खेत में दो प्रकार के बीज इकट्ठे न बोना; और

सनी और ऊन की मिलावट से बना हुआ वस्त्र न पहिनना। 20फिर कोई स्त्री दासी हो, और उसकी मंगनी किसी पुरुष से हुई हो, परन्तु वह न तो दाम से और न सेंतमेंत स्वाधीन की गई हो; उससे यदि कोई कुकर्म करे, तो उन दोनों को दण्ड तो मिले, पर उस स्त्री के स्वाधीन न होने के कारण वे दोनों मार न डाले जाएँ। 21पर वह पुरुष मिलापवाले तम्बू के द्वार पर यहोवा के पास एक मेढ़ा दोषबलि के लिये ले आए। 22और याजक उसके किये हुए पाप के कारण दोषबलि के मेढ़े के द्वारा उसके लिये यहोवा के सामने प्रायश्चित्त करे; तब उसका किया हुआ पाप क्षमा किया जाएगा। 23फिर जब तुम कनान देश में पहुँचकर किसी प्रकार के फल के वृक्ष लगाओ, तो उनके फल तीन वर्ष तक तुम्हारे लिये मानो खतनारहित ठहरे रहें; इसलिये उनमें से कुछ न खाया जाए। 24और चौथे वर्ष में उनके सब फल यहोवा की स्तुति करने के लिये पवित्र ठहरें। 25तब पाँचवें वर्ष में तुम उनके फल खाना, इसलिये कि उनसे तुम को बहुत फल मिलें; मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ। 26तुम लहू लगा हुआ कुछ मांस न खाना। और न टोना करना, और न शुभ या अशुभ मुहूर्तों को मानना। 27अपने सिर में घेरा रखकर न मुँड़ाना, और न अपने गाल के बालों को मुँड़ाना। 28मुर्दों के कारण अपने शरीर को बिलकुल न चीरना, और न उसमें छाप लगाना; मैं यहोवा हूँ। 29अपनी बेटियों को वेश्या बनाकर अपवित्र न करना, ऐसा न हो कि देश वेश्यागमन के कारण महापाप से भर जाए। 30मेरे विश्रामदिन को माना करना, और मेरे पवित्रस्थान का भय निरन्तर मानना; मैं यहोवा हूँ। 31ओझाओं और भूत साधने वालों की ओर न फिरना, और ऐसों की खोज करके उनके कारण अशुद्ध न हो जाना; मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ। 32पक्के बालवाले के सामने उठ खड़े होना, और बूढ़े का आदरमान करना, और अपने परमेश्वर का भय निरन्तर मानना; मैं यहोवा हूँ। 33यदि कोई परदेशी तुम्हारे देश में तुम्हारे संग रहे, तो उसको दुःख न देना। 34जो परदेशी तुम्हारे संग रहे वह तुम्हारे लिये देशी के समान हो, और उससे अपने ही समान प्रेम रखना; क्योंकि तुम भी मिस्र देश में परदेशी थे; मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ। 35तुम न्याय में, और परिमाण में, और तौल में, और नाप में कुटिलता न करना। 36सच्चा तराजू, धर्म के बटखरे, सच्चा एपा, और धर्म का हीन तुम्हारे पास रहें; मैं तुम्हारा वह परमेश्वर यहोवा हूँ जो तुम को मिस्र देश से निकाल ले आया। 37इसलिये तुम मेरी सब विधियों और सब नियमों को मानते हुए निरन्तर पालन करो; मैं यहोवा हूँ।"

इस अध्याय के तीसरे और अंतिम अनुभाग में जीवन के विभिन्न पहलुओं से संबंधित व्यवस्थाएं दी गई हैं। उनमें से अधिकांश विधियां में, इस्राएल को परमेश्वर की बुलाहट कि वे एक पवित्र देश बने (एक विशिष्ट राष्ट्र, दूसरे जातियों से भिन्न के संदर्भ में) की मंशा प्रतिबिंब होती है ताकि वे दूसरों के प्रति सच्चा प्रेम प्रदर्शित कर सकें।

आयत 19. यहोवा ने असमान वस्तुओं को मिलाने से मना किया था, जैसे उनको अपने पशुओं को भिन्न जाति के पशुओं से मेल नहीं खाने देना था, दो प्रकार के बीच एकट्ठे नहीं बोना था, या सनी और ऊन की मिलावट वाली वस्त्र नहीं

पहनना था। आर. लैयर्ड हैरिस ने इस आज्ञा की विभिन्न अर्थों पर चर्चा किया है। संभवतः दो भिन्न प्रकार के बीजों को एक साथ खेत में बोने से उनके कटनी के समय कठीनाई होती होगी जो अलग-अलग समय में कटनी के लिए तैयार होते थे। दो भिन्न प्रकार के मिलावटी धागों से बने वस्त्र का असामान्य सिकुड़न के कारण निरंतरता बनाये रखना कठिन था। भिन्न जातियों के पशुओं का मेल से यह तात्पर्य था कि इस्राएलियों को घोड़े और गधे का मेल नहीं कराना था जिससे खच्चर पैदा होते (यद्यपि यह असंभव है) या उन्हें अपने अच्छे मिस्री पशुओं का मेल कनानी पशुओं से नहीं कराना था। अधिक संभावना यह है कि यह अनुच्छेद इस ओर संकेत करता है कि गधे और बैल को हल या गाड़ी खींचने के लिए जुआ में नहीं जोतना था (देखें व्यव. 22:9-11)।[10]

इन नियमों के ठीक-ठीक लक्ष्यार्थ पर ध्यान दिए बिना, कोई भी यह अनुमान लगा सकता है कि वे इस्राएल के लिए लाभकारी थे। ये ऐसे भी जान पड़ते हैं मानो वे अन्य जातियों के बीच इस्राएल की परिस्थितियों के लिए उदाहरण हैं। जिस तरह भिन्न-भिन्न किस्म के पशु, बीज, और वस्त्र, नहीं **मिलाये जाने** चाहिए थे, वैसे ही इस्राएल की पवित्रता को - जिन्हें परमेश्वर के लोग के रूप में विशेष दर्जा मिला था - का अर्थ यह है कि उनको इस संसार के लोगों के साथ ऐसा नहीं "मिलना" चाहिए था जो उनकी धार्मिकता को हल्का करे। क्योंकि परमेश्वर के लोगों का उसकी आराधना में अलग रहने का वास्तविक तात्पर्य उनके पड़ोसियों के प्रति प्रेम का प्रगटीकरण हैः दूसरों के लिए जो सर्वोत्तम वे कर सकते थे वह यह था कि वे "जातियों के लिए प्रकाश" ठहरते (यशा. 42:6); और वे ऐसे प्रकाश तब तक नहीं ठहर सकते थे जब तक कि वे दूसरों से भिन्न, सम्पूर्ण रूप से यहोवा परमेश्वर को समर्पित जीवन न जीते।

आयतें 20-22. यहाँ एक इस्राएली पुरुष की विशेष परिस्थिति की ओर ध्यान आकर्षित किया गया है जो **एक दासी से कुकर्म करे और जिसकी मंगनी किसी पुरुष से हुई हो** (19:20)। दूसरे शब्दों में, यह व्यवस्था उस पुरुष पर लागू होता है जो उस स्त्री से यौन संबंध बनाए जो न तो उसकी पत्नी है और न ही उसका दासी, परंतु वह तो एक दासी है जिसको नहीं **छुड़ाया गया** है या स्वतंत्र किया गया है - जो दूसरे की सम्पत्ति है। चूँकि व्यभिचार के लिए मृत्युदण्ड दिया जाता था, तो यहाँ एक प्रश्न उठता हैः "क्या ये दोनों व्यक्ति पत्थरवाह किए जाएं?" यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह एक पाप था, यहोवा ने कहा **उन दोनों को दण्ड तो मिले, पर उस स्त्री के स्वाधीन न होने के कारण वे दोनों मार न डाले जाएँ**।[11] जिस जोड़े ने इस प्रकार का पाप किया है उनको दण्ड दिया जाना चाहिए, यद्यपि इस पाप के **दण्ड** का विस्तृत विश्लेषण यहाँ नहीं पाया जाता है (19:20)। अपने पाप क्षमा के लिए पुरुष को **दोषबलि** भेंट करना था, जिसमें उसे **एक मेढ़े** को याजक को देना था **जो उसके लिए प्रायश्चित्त करता**। इस प्रायश्चित्त के परिणामस्वरूप उसका **पाप क्षमा किया जाता** (19:21, 22)।

इस व्यवस्था के पीछे की विचारधारा से ऐसा जान पड़ता है कि जब कोई गलत कार्य करता है तो उसके बदले उसको एक उचित प्रत्युत्तर देना चाहिए। स्पष्ट

रूप से, जिस प्रकार वर्णन किया गया है उस प्रकार यदि पुरुष ने पाप किया है और उसको पत्थरवाह किया जाता है तो यह अन्याय ठहरता (और उससे अधिक अन्याय तब होता यदि उस्त्री को भी जिसके साथ वह सोया था, को भी पत्थरवाह किया जाता)। इसके साथ ही उस पुरुष के लिए यह भी गलत बात होती यदि वह अपने पापों के लिए पाप क्षमा न मांगता और दोषबलि न लाता। उचित बातें न करने से पापी को नुकसान पहुँचता है। यह समाज को भी नुकसान पहुँचा सकता था। दूसरे से प्रेम करने का तात्पर्य यह है कि जिस व्यक्ति ने गलत कार्य किया है उसको उसकी गलती के बारे में भी बताना है। हर एक परमेश्वर के लोग पाप कर सकते थे, गलत कार्य कर सकते थे; उनके भले और समाज के भले के लिए महत्वपूर्ण बात यह थी कि हर एक पापी को अपने गलत कार्य सुधारने के लिए सर्वोत्तम प्रयत्न करना चाहिए था।

आयतें 23-25. अगली विधि इस्राएली लोगों का कनान में बसने के बाद के जीवन से संबंधित है। यहोवा ने कहा कि प्रतिज्ञा के देश में उनके प्रवेश करने के पश्चात् वे **हर प्रकार के फल के वृक्ष लगाएं**। **तीन वर्ष** तक वे इन वृक्षों को बढ़ने दें और जो भी **फल** उसमें लगे वे उनको लगने दें। वे उनके फल न तोड़ें; इसके लिए उनको **मना**[12] किया गया था (19:23)। उनको **चौथे वर्ष** परमेश्वर को फसल अर्पित करना था; यह पवित्र ठहरता और यह **यहोवा की स्तुति के लिए पवित्र ठहरता** (19:24)। केवल पाँचवे वर्ष वे उन वृक्षों के फल खा सकते थे जिनको उन्होंने रोपा था (19:25).

संभवतः इनका विश्लेषण यह था कि प्रथम तीन वर्ष फसल छोड़ दिया जाता; कृषि के दृष्टिकोण से इस समयांतराल में उन वृक्षों से फल नहीं बटोरा जाना चाहिए था।[13] तब इस्राएली लोग यहोवा को प्रथम फल, जो चौथे वर्ष लगा था, देकर उसके प्रति अपनी भक्ति प्रगट करेंगे। ऐसा करने के द्वारा परमेश्वर को प्रथम फल की भेंट चढ़ाना था।[14] चौथे वर्ष के पश्चात् लोग फल खाने के लिए स्वतंत्र थे परंतु निस्संदेह उनको यहोवा के लिए अपने बाग से भेंट लाते रहना चाहिए था। यदि उन्होंने ऐसा किया तो वे संपन्नता अनुभव करेंगे।[15]

चौथे वर्ष यहोवा को फल देना, इस्राएल की पवित्रता और उनका परमेश्वर पर भरोसा दर्शाता है। यदि उन्होंने अपने वृक्षों के सर्वोत्तम प्रथम फल यहोवा को दिया तो वे कैसे जीवित रहेंगे? उनका विश्वास था कि किसी तरह परमेश्वर उनके लिए उपाय करेगा। इस बात पर भरोसा करना कि यहोवा सर्वोत्तम जानता है और उस भरोसा पर बने रहना यह बताता है कि जो व्यक्ति उस पर भरोसा करता है, स्वयं उसको एवं पूरे समाज को उससे लाभ मिलता है।[16]

आयतें 26-28. अब यहोवा ने विभिन्न प्रकार के मूर्तिपूजकों के व्यवहारों पर ध्यान केन्द्रित किया, जो यह सुझाव प्रस्तुत करता है कि जब इस्राएली लोग कनान देश (19:23) में प्रवेश करेंगे तो वे विभिन्न प्रकार के मूर्तिपूजकों के रीति रिवाजों के द्वारा परखे जाएंगे। (1) उस देश के लोग **लहू** निकाले बिना मांस **खाएंगे**, संभवतः जो उनके देवताओं को बलि चढ़ाने से संबंधित था (19:26)। (2) हो सकता है कि वे **टोना** व **शुभ और अशुभ मुहुर्त** मानेंगे - ये ऐसे विधियां है जिसके द्वारा मूर्तिपूजक

लोग देवी देवताओं या आत्माओं की इच्छा जानने का दावा करते हैं (19:26)। (3) वे अपने सिर के बाल का घेरा इस तरह बनाएंगे और अपनी दाढ़ी ऐसे मुंडाएंगे जो यह दिखाएगा कि वे किसी खास देवी देवता के पुजारी हैं या फिर किसी विशेष धर्म के उपासक हैं (19:27)। (4) वे देवताओं का ध्यान आकर्षित करने के लिए या **मुर्दों** की सहायता पाने के लिए अपना देह **चीरवा** सकते थे;[17] और वे अपने मूर्तिपूजकों की धार्मिकता दिखाने के लिए अपने देह पर **छाप बनवा** सकते थे (19:28)।[18]

इस्राएलियों को इनमें से किसी भी रीति रिवाज का अभ्यास नहीं करना था। उन्हें पहले ही बता दिया गया था कि उनको लहू नहीं खाना है; कनानियों का मूर्तिपूजक होने के कारण उनको इस व्यवस्था का आज्ञा मानना आवश्यक था। वे केवल परमेश्वर को ही मार्ग दर्शन के लिए पुकार सकते थे; टोना या शुभ व अशुभ मुहुर्त की अभ्यास में संलग्न नहीं हो सकते थे (देखें 19:31)। इससे बढ़कर, उन्हें किसी विशेष प्रकार से सिर के बाल कटाना, दाढ़ी मुंडाना और चमड़े पर छाप बनवाना जो उस समाज के लोग करते थे, और इस प्रकार का रूप धारण कर उस समाज के समान वे लगते थे, से बचना चाहिए था। संक्षिप्त में, उनको उस प्रकार के सभी व्यवहार से बच कर रहना था जो उनकी पहचान दूसरे धर्म के मानने वाले से करे। वे पवित्र लोग थे, अलग किए गए लोग थे; और उनको अपनी पवित्रता का परिचय मूर्तिपूजकों के धार्मिक व्यवहार का अनुकरण करके नहीं देना था।

फिर, ऐसा करके, वे अपने पड़ोसियों के प्रति प्रेम प्रकट करते। जिस संसार में वे रहते थे उसको आशीषित करने के लिए इस्राएलियों को अपनी अलग पहचान बनाकर रखनी थी - और उनको अपनी इस पहचान को अपने मूर्तिपूजक पड़ोसियों के रीति रिवाजों का अनुकरण न करके बनाए रखना था। वे दूसरों के लिए तभी आशीष का कारण बन सकते थे जब वे उनसे भिन्न होते। इन आज्ञाओं को मानने की महत्वताः **"मैं यहोवा हूँ,"** वक्तव्य से व्यक्त किया गया है।

आयत 29. अगली विधि भी कनानियों के धार्मिक अभ्यास से जोड़ा जा सकता है। यहोवा ने आज्ञा दी, **"अपनी बेटियों को वेश्या बनाकर अपवित्र न करना।"** संभवतः यहोवा वेश्यागमन की प्रथा को संबोधित कर रहा था - इस प्रथा के अंतर्गत वेश्याएं मंदिर में मूर्तियों की सेवा किया करतीं थीं। यह व्याख्या इस संदर्भ में उचित ठहरती है। फिर भी, अपनी पुत्री को किसी भी प्रकार के वेश्यावृति के लिए सौंपने को इस आयत के द्वारा निंदा किया गया है।

ऐसा करने से मना करने का कारण यह है कि यदि इस्राएली लोग वेश्यावृति के जाल में फंस गए तो **देश वेश्यावृति का शिकार हो जाएगा** और यह **महापाप से भर जाएगा**। पाप की प्रवृति फैलने की है। यदि वेश्यागमन को कोई भी एक जन गले लगाएगा तो बहुत जल्दी सभी लोग इसको अपना लेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि पापी लोग उस देश पर राज करेंगे जिसे परमेश्वर ने उन्हें दिया था।

आयत 30. यदि यह अनुमान लगाया जाए कि इस अनुभाग में जब इस्राएली लोग कनान देश में प्रवेश करेंगे तो उन्हें कैसे व्यवहार करना चाहिए तो 19:30 इसका ठीक उलटा है। यह इसके पहले की आज्ञा और इसके बाद की आज्ञा से भिन्न

है। कनान के लोगों का व्यवहार का अनुकरण करने के बजाए परमेश्वर के लोगों को परमेश्वर की बातों का आदर करना चाहिए थाः उन्हें **विश्रामदिन** मानना था और उनको उसके **पवित्र स्थान का भय** निरंतर मानना था। बहुवचन "विश्रामदिन," वर्ष के सभी साप्ताहिक विश्रामदिन, छुट्टियाँ, पर्व, और सातवाँ वर्ष बताता है। यहाँ "पवित्रस्थान" का संदर्भ मिलापवाले तम्बू से है लेकिन कालांतर में यह मंदिर का संदर्भ बताता है जब वह बन जाएगा। ये व्यवस्था इस बात की ओर संकेत करते हैं कि प्रतिज्ञा का देश, झूठे देवी-देवताओं की आराधना का स्थान नहीं होगा बल्कि यह सदैव वह देश होगा जहाँ केवल यहोवा परमेश्वर की ही आराधना की जाएगी।

आयत 31. अंतिम स्पष्ट निषेधाज्ञा कनान देश की मूर्तिपूजा से संबंधित है कि इस्राएलियों को **ओझा और भूत साधने वालों की ओर नहीं फिरना है**। "ओझा" वह है जो एक मरे हुए व्यक्ति और एक जीवित व्यक्ति के बीच बिचवई का कार्य करता है। "भूत साधने वाला" आत्माओं के संसार से इस संसार में रहने वाले लोगों के बीच संदेश लाता है।

चौथी आयत की व्यवस्था मूर्तियों का बनाना व उनकी उपासना करना मना करता है। छब्बीसवीं आयत "टोना" और "शुभ व अशुभ मुहुर्त" मानने से मना करता है, जो मूर्तिपूजकों के माध्यम के द्वारा प्रश्नों का उत्तर या भविष्य के बारे में बताने का प्रयास करता है। सत्ताइसवीं व अट्ठाइसवीं आयतें मूर्तिपूजकों के चाल चलन अनुकरण करने से मना करता है। अंततः इकतीसवीं आयत यह बताता है कि लोगों को दिशा निर्देशन के लिए मूर्तिपूजकों के भविष्य बताने वालों से सम्पर्क नहीं करना है। यहोवा ने स्पष्ट कर दिया था कि इस्राएल को मूर्तिपूजक अगुओं के दिशा निर्देशन का अनुकरण नहीं करना था। व्यवस्थाविवरण 18:9-14 भी यही सिद्धांत सीखाता है और उसमें यह भी जोड़ता है कि इस्राएल को मूर्तिपूजक अगुओं के दिशा निर्देशन के बजाए परमेश्वर के भविष्यवक्ताओं का अनुकरण करना चाहिए था (व्यव. 18:18, 19)।

मूर्तिपूजकों के दिशा निर्देशन का इनकार कर, केवल परमेश्वर की ही दिशा निर्देशन सुनने से, इस्राएल उत्तम लोग होते और उनका देश सब लोगों के लिए, चाहे उसमें अन्य जाति लोग ही क्यों न रहते हों, उत्तम देश हो जाता। दूसरे शब्दों में, इस व्यवस्था का अनुकरण करने का अर्थ एक तरीके से "अपने पड़ोसी से प्रेम कर" आज्ञा मानना है।

आयत 32. इस अध्याय के अंतिम आयतों में, यहोवा ने उन लोगों से संबंधित आज्ञाएं दीं जिनका दूसरे लोग दुरूपयोग कर सकते थे। सबसे पहले, उसने हर एक इस्राएली को आज्ञा दी कि वे **पक्के बाल वालों के सामने उठ खड़े हों** और **बूढ़े का आदरमान करें**। स्पष्ट रूप से यह व्यवस्था "[अपने] माता और पिता का आदर" करने से संबंधित है (19:3), लेकिन यह उस आज्ञा में एक और आयाम जोड़ता है। एक इस्राएली को न केवल अपने माता और पिता का आदर करना था बल्कि उसको अन्य सभी लोगों का भी आदर करना था। सभी बूढ़े लोगों का आदर सत्कार किया जाना चाहिए था।

इस आज्ञा की आवश्यकता क्यों थी? बढ़ती उम्र के साथ ही जवानी का जोश भी क्षीण होता जाता है। बूढ़े, निर्बल होने के कारण अक्सर स्वरक्षा करने में असफल होते हैं; वे जवान प्रतिद्वंदी से अपनी रक्षा नहीं कर सकते हैं। इस आज्ञा का उद्देश्य बलहीनों की रक्षा के साथ ही उनकी महत्वत्ता को समझना है। "बूढ़े" भी "पड़ोसियों" के श्रेणी में थे जिन्हें इस्राएलियों को प्रेम करना था।

आयतें 33, 34. दुरुपयोग के दूसरे समूह के लोग **परदेशी** थे, जो गैर इस्राएली थे और परमेश्वर के लोगों के बीच रहते थे। परिभाषा के अनुसार, परदेशी भूमिहीन थे। आवश्यकता के समय कोई परिवार, गोत्र या जाति उनको सुरक्षा प्रदान करने के लिए और देखभाल करने के लिए नहीं था। इसलिए, उनका आसानी से दुरूपयोग किया जा सकता था। एक इस्राएली ऐसा सोच सकता था कि "क्यों न इन लोगों का फ़ायदा उठाया जाए? वे तो परमेश्वर के लोगों में से नहीं है। वे तो केवल हमारी दया के कारण यहाँ वास कर रहे हैं, क्योंकि हमने उनको अपने देश में जगह दी है। उनको प्रेम करने और देखभाल करने का कोई कारण नहीं है। हमारे देश से बाहर के लोगों ने अपने फायदे के लिए हमेशा हमारा दुरुपयोग किया है; तो क्यों न हम भी उनके साथ वैसा ही करें?"

तैंतीस और चौंतीस आयत में परमेश्वर ने इस प्रश्न का उत्तर दिया है। उसने इस्राएलियों को कहा वे इन लोगों के साथ कुछ भी **गलत व्यवहार न** करें। इसके साथ ही उसने यह भी कहा कि एक इस्राएली को, परदेशी और इस्राएली के बीच अंतर नहीं करना था। जिस तरह उसको अपने पड़ोसी को अपने समान प्रेम करना था, उसी तरह उसको परदेशी को भी **प्रेम** करना था! यह व्यवस्था इस संदर्भ के आरंभ में दिए गए आज्ञा से बढ़कर था। यह इस्राएली को परदेशी की ओर गलत कदम उठाने से न केवल रोकता था बल्कि उनको आशीषित करने के लिए जो भी सकारात्मक कदम वे उठा सकते थे, उनको उठाना था। यही तो है जब कोई दूसरे को अपने समान प्रेम करता है। इस आज्ञा ने न केवल आत्म रक्षा विहीन परदेशी को सुरक्षा प्रदान की बल्कि इसने परमेश्वर के लोगों को उन गैर-इस्राएलियों की देखभाल, ठीक वैसे ही करने के लिए उत्साहित किया जिस तरह वे अपने मित्रों व परिवार के सदस्यों की देखभाल करते हैं!

परमेश्वर ने इस्राएलियों को परदेशियों का ध्यान इसलिए रखने के लिए कहा क्योंकि वे स्वयं पहले परदेशी थेः क्योंकि **वे मिस्र देश में परदेशी थे**। उनके इस अनुभव ने संभवतः उनको इन परदेशियों के संग नर्मी बरतना सीखाया होगा और इसी बात ने उनको यह आज्ञा मानने के लिए प्रेरित किया होगा कि वे उनके साथ वैसे ही व्यवहार करें जैसे वे अपने साथ चाहते हैं। इस्राएल को यह सीखना था कि दूसरों के प्रति प्रेम को अपनों तक ही सीमित नहीं रखना चाहिए था; बल्कि दूसरों से प्रेम करने का तात्पर्य उनके बीच रहने वाले परदेशियों से भी प्रेम करना था।

आयतें 35, 36. दुरुपयोग किए जाने वाले तीसरे समूह के वे लोग थे जो व्यापार में लगे थे, जो बाज़ार में वस्तुएं खरीदते व बेचते थे। कोई भी चालाक और बेईमान व्यापारी उनको धोखा दे सकता था, जिसका प्राथमिक हथियार माप में घटतौली करना था। जब वे किसी आपूर्तिकर्ता से सामान लेते थे तो वह व्यापारी

तराज़ू का संतुलन बनाए रखने के लिए भारी बटखरे का प्रयोग करता था या परिमाण नापने के लिए बड़े बर्तन का प्रयोग करता था; जिससे वह अपने धन के बदले अधिक माल प्राप्त करता था। जब वह उसी वस्तु को किसी संदेहरहित ग्राहक को बेचता था तो वह कम भार वाले बटखरे या कम परिमाण वाले बर्तन प्रयोग करता था, इसलिए हो सकता है कि यदि ग्राहक ने 2 पौंड का दाम चुकाया होगा परंतु वह घर मात्र $1^1/_2$ पौंड ही ले जाता है। चूँकि ग्राहक इस बेईमान व्यापारी के तराज़ू और बटखरे पर निर्भर होता है, तो वह अपने आपको धोखा खाने से नहीं रोक सकता था।

यह विधि किसी भी व्यापार में अनुचित साधन प्रयोग करने वाले व्यापारी को गैरकानूनी ठहराता था, चाहे वह **भार तोलने** वाला हो या फिर **परिमाण माप** करने वाला बर्तन हो। उसको **धर्म के बटखरे** और उचित "परिमाण" वाली बर्तन प्रयोग करने का आदेश दिया गया था - एक **सच्चा एपा** (लगभग बत्तीस सेर का तौल) और **धर्म का हीन** (लगभग एक गैलन)।

इस्राएल के व्यापारियों को इसलिए ईमानदार होना था क्योंकि **यहोवा** उनका **परमेश्वर** था, जिसने उनको **मिस्र देश** से बाहर निकाला था। परमेश्वर ने उन पर दया किया था इसलिए उनको उसकी आज्ञा मानना था - और उसकी आज्ञा की अर्हता यह था कि उनको अपने व्यापार में पूर्णतया ईमानदार और पारदर्शी होना था। जब वे ऐसा करते तो वे अपने लोगों के प्रति प्रेम प्रकट करते।

आयत 37. एक सारांश वक्तव्य के साथ यह व्यवस्था समाप्त होती है कि इस अध्याय में (और अन्यत्र) दिए गए हर एक आज्ञा मानी जानी चाहिए। स्वयं परमेश्वर ने कहा कि इस्राएल को उसकी **सारी विधियों** और **सारे नियमों** को मानना है। दो तथ्यों पर ज़ोर दिया गया है: परमेश्वर की *सारी* विधियां (उनमें से कुछ नहीं) *मानी जानी* (केवल विश्वास ही नहीं करना है) चाहिए। जितनी आज्ञा परमेश्वर ने इस्राएलियों को दी थी यदि वे उनको मानने की चौकसी करें, तो वह उनसे प्रसन्न होगा। उसके बाद ही वे दण्ड से बचेंगे। इस सारांश की गारंटी इस प्रकार दी गई है: जिस परमेश्वर ने ये विधियां दी उसने कहा, **"मैं यहोवा हूँ"!** चूँकि वह यहोवा था, तो उसका विरोध या अनदेखा करना मूर्खता थी।

अध्याय 19 में दिए गए विधियों की विशेषता

अध्याय 19 में पाई जाने वाले विधियों की विशेषता पर ध्यान दिया जाना चाहिए:

1. वे निर्बल और मताधिकार से वंचित लोगों - निर्धन, परदेशी, दिव्यांग, और बूढ़ों के प्रति बड़ी चिंता व्यक्त करते हैं (देखें 25:35-55)।
2. वे जीवन के हर पहलू: कृषि, खरीदना और बेचना, व्यापार संबंधी, परिवारिक संबंध, न्याय व्यवस्था, नैतिक और आराधना को प्रभावित करते हैं।

3. वे विचारों एवं कार्यों पर नियंत्रण करते हैं।
4. वे इस प्रकार की परिस्थिति में इस्राएलियों को क्या करना चाहिए था, का प्रतिनिधित्व करते हैं।[19]
5. यहोवा की ही सेवा और आराधना करने की आवश्यकता व अपने पड़ोसी से प्रेम करने पर ज़ोर देते हैं।
6. परमेश्वर की आज्ञा पालन करने का कई कारण बताते हैं, जिसमें परमेश्वर ने इस्राएलियों के लिए क्या किया था (मिस्र देश से उनको छुड़ाना) भी शामिल है और यह तथ्य कि यदि वे आज्ञा मानते हैं तो वे सर्वसमपन्न होंगे। प्राथमिक कारण जो बार-बार दोहराया गया है वह यह है कि यहोवा ही परमेश्वर है। उसके पास यह घोषणा करने के लिए कि इस्राएल को क्या करना चाहिए, एक तरफा अधिकार है; और उसने जो विधियां दी है उसको वह निश्चय लागू करेगा!

दूसरों से प्रेम करना (अध्याय 19)

सबसे बड़ी आज्ञा यह है कि "तू परमेश्वर अपने प्रभु से अपने सारे मन और अपने सारे प्राण और अपनी सारी बुद्धि के साथ प्रेम रख" (मत्ती 22:37)। दूसरी सबसे बड़ी आज्ञा यह है "तू अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रख" (मत्ती 22:39)। यह आज्ञा मत्ती, मरकुस और लूका में पाई जाती है[20] - लेकिन यह सबसे पहले पुराने नियम में लैव्यव्यवस्था की पुस्तक में दी गई है।

एक ऐसी पुस्तक जिसमें बलिदान संबंधी रीति रिवाज, धार्मिक पर्व, और शुद्धिकरण की बात पाई जाती है उसमें इस्राएलियों को अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करने का निर्देश का पाया जाना आश्चर्यचकित करता है। फिर भी, इस संदर्भ में परमेश्वर की यह आज्ञा थी "पलटा न लेना, और न अपने जाति भाइयों से बैर रखना, परन्तु एक दूसरे से अपने ही समान प्रेम रखना। मैं यहोवा हूँ" (19:18)।

परमेश्वर का पवित्र देश होने के नाते इस्राएलियों को प्रेमी होना चाहिए था। वे पवित्र लोग थे - लहू से शुद्ध किए गए और अशुद्धता से स्वतंत्र किए गए लोग थे - जो निरंतर आराधना करते और बलिदान भेंट करते थे। उन्हें ऐसे लोग होना चाहिए था जिनकी विशेषता प्रेम है। इस पाठ में हमने सीखा कि परमेश्वर इस्राएल से उनका प्रेम दूसरों को दिखाने के लिए उनसे क्या चाहता है।

परमेश्वर की आज्ञा मानना

उन्नीसवाँ अध्याय इन शब्दों के साथ प्रारंभ होता है: "पवित्र बने रहो; क्योंकि मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा पवित्र हूँ" (19:2)। लगभग इस अध्याय के बीच में ऐसा कहा गया है, "एक दूसरे से अपने ही समान प्रेम रखना; मैं यहोवा हूँ" (19:18)। यह "इसलिये तुम मेरी सब विधियों और सब नियमों को मानते हुए निरन्तर पालन करो; मैं यहोवा हूँ" (19:37) के साथ समाप्त होता है। पवित्र होने

के लिए अपने पड़ोसी से प्रेम करना अनिवार्य था; और अपने पड़ोसी से प्रेम करने के लिए उसको परमेश्वर की आज्ञा पालन करना था।

कौन सी आज्ञाएं? इस अध्याय में अधिकांश दस आज्ञाएं दोहराई गई है और इसमें दूसरी आज्ञाएं भी सम्मिलित है जिनको विशिष्ट रूप से यहाँ नहीं उल्लेखित किया गया है।

दस आज्ञाओं में से प्रथम आज्ञा में यह कहा गया है कि इस्राएलियों को यहोवा को छोड़ किसी दूसरे ईश्वर को नहीं मानना था और दूसरी आज्ञा उन्हें मूर्ति पूजा करना या मूर्तियाँ ढालकर बनाने के लिए मना करता है (निर्गमन 20:3, 4)। लैव्यव्यवस्था 19:4 कहता है, "तुम मूरतों की ओर न फिरना, और देवताओं की प्रतिमाएँ ढालकर न बना लेना; मैं तुम्हारा परमेश्वर यहोवा हूँ।"[21] तीसरी आज्ञा यहोवा के नाम को व्यर्थ लेने से मना करता है (निर्गमन 20:7); और लैव्यव्यवस्था 19:12 कहता है, "तुम मेरे नाम की झूठी शपथ खाके अपने परमेश्वर का नाम अपवित्र न ठहराना; मैं यहोवा हूँ।" चौथी आज्ञा के अनुसार परमेश्वर के लोगों को विश्रामदिन मानना था (निर्गमन 20:9-11), और लैव्यव्यवस्था 19 में इस्राएलियों को दो बार विश्रामदिन मानने के लिए कहा गया है (19:3, 30)।

पाँचवीं आज्ञा यह है "अपने पिता और माता का आदर करना" (निर्गमन 20:12)। लैव्यव्यवस्था 19:3 कहता है, "तुम अपनी अपनी माता और अपने अपने पिता का भय मानना।" छठी आज्ञा यह है, "तू हत्या न करना" (निर्गमन 20:13)। लैव्यव्यवस्था 19 विशेष रूप से हत्या न करने के लिए नहीं कहता है, परंतु यह यह कहता है, "एक दूसरे का लहू बहाने की युक्तियाँ न बाँधना" (19:16) - और यह विधि हत्या के विरूद्ध लगता है।

सातवीं आज्ञा व्यभिचार करने से मना करती है (निर्गमन 20:14)। फिर, लैव्यव्यवस्था 19 में व्यभिचार करने से संबंधित विशिष्ट आज्ञा नहीं पाई जाती है लेकिन इस अध्याय में यह पाया जाता है कि यहोवा इस्राएलियों के यौन संबंध से चिंतित थे, क्योंकि इसमें एक विधि ऐसे भी पाई जाती है जिसमें एक पिता को अपनी पुत्री को वेश्या न बनाने के लिए कहा गया है (19:29) और उस पुरुष को दण्ड देने का प्रावधान रखा गया है जो एक दासी से यौन संबंध स्थापित करता है (19:20-22)।

आठवीं आज्ञा यह है "तू चोरी न करना" (निर्गमन 20:15), और नौवीं आज्ञा यह है "तू अपने पड़ोसी के विरूद्ध झूठी साक्षी न देना" (निर्गमन 20:16)। लैव्यव्यवस्था 19:11 इन दोनों आज्ञाओं से संबंधित है जो यह कहता है, "तुम चोरी न करना, और एक दूसरे से न तो कपट करना, और न झूठ बोलना।" दसवीं आज्ञा यह है "तू लालच न करना" (निर्गमन 20:17)। लैव्यव्यवस्था 19 की कोई भी आयत लालच करने के बारे में मना नहीं करता है, यद्यपि इस अध्याय की मांग सबके प्रति पारदर्शिता और उदारता है (देखें 19:9, 10, 35, 36)।

अपने पड़ोसी को अपने समान तभी प्रेम किया जा सकता है जब परमेश्वर की आज्ञा मानी जाती है, विशेषकर वे आज्ञाएं जो दस आज्ञाओं में मिलती है। विश्रामदिन की आज्ञाओं को छोड़ दिया जाए तो ये सभी आज्ञाएं नये नियम में भी

पाये जाते हैं। दस आज्ञाओं की अंतिम छः आज्ञाओं में प्रेम का सिद्धांत स्पष्ट है, जो हमारे एक दूसरे के साथ व्यवहार पर रोशनी डालता है। यदि हम दूसरे को अपने समान प्रेम करते हैं तो हम उनकी हत्या नहीं करेंगे, उनके पति या पत्नी के साथ व्यभिचार नहीं करेंगे, उनसे चोरी नहीं करेंगे, उनसे झूठ नहीं बोलेंगे, या उनकी वस्तुओं का लालच नहीं करेंगे।

यह विचार इतना स्पष्ट नहीं है कि केवल यहोवा ही की आराधना करना, मूर्तियाँ ढालकर न बनाना और उनकी उपासना न करना, और परमेश्वर के नाम को व्यर्थ में न लेना भी पड़ोसियों के प्रति प्रेम दिखाने का माध्यम है। पहली और दूसरी सबसे बड़ी आज्ञा एक दूसरे के साथ नजदीकी से जुड़े हुए हैं; जो यहोवा का अनुकरण करते हैं, वे दूसरे के साथ भला व्यवहार करते हैं (देखें 1 यूहन्ना 4:21)।

एक विशिष्ट पहचान बनाए रखना

इस्राएलियों को अपनी विशिष्ट पहचान परमेश्वर की आज्ञा का पालन करते हुए दूसरों के प्रति प्रेम प्रकट करने के द्वारा बनाए रखनी थी।[22] "पवित्रता" उनके अलग होने की मांग करता है। अन्य जातियों के लिए ज्योति (देखें यशा. 42:6; 49:6) और उनकी भिन्नता ने ही उन्हें दूसरे लोगों के लिए आशीष का कारण ठहराया (देखें उत्पत्ति 12:2)।

निस्संदेह, यहोवा की आराधना करना और दूसरों को चोट न पहुँचाना ने इस्राएलियों को अन्य जातियों के बीच भिन्न बनाया। इसके साथ ही, कई अन्य असाधारण अपेक्षाएं भी इस अध्याय में पायी जाती हैः मिश्रण के बारे में, लहू खाने के बारे में, पुरुष के बाल, दाढ़ी और देह पर छाप बनवाने के बारे में, प्रतिज्ञा के देश में कृषि के बारे में। हो सकता है कि ये विधियां किसी दूसरे उद्देश्य की पूर्ति करते हों, उनको यह स्पष्ट करने के लिए देखा जाना चाहिए था कि कौन इस्राएली था और कौन इस्राएली नहीं था।

सबसे पहले, इस्राएलियों को विभिन्न प्रकार के चीज़ों का मिश्रण नहीं करना था (19:19)। हो सकता है कि परमेश्वर इस बात की महत्वत्ता का उदाहरण उनको दे रहा था कि जब वे दूसरे जातियों के संपर्क में आएं तो उनके साथ न मिल जाएं।

दूसरी बात, जब इस्राएली लोग कनान देश में प्रवेश करेंगे और फलों के वृक्ष लगाएंगे तो उन फलों की कटनी करने के संबंध में दिए गए निर्देश उनको दूसरे जातियों से भिन्न बनाती थी (19:23-25)। प्रथम तीन वर्षों में वृक्षों पर फल तो लगेंगे लेकिन उन फलों को नहीं तोड़ना था। उनको चौथे वर्ष की खेती यहोवा को देना था। पाँचवें और उसके बाद के वर्षों में वे उन वृक्षों के फल खा सकते थे। इस विधि ने अच्छी कृषि की प्रथा तैयार की। इस प्रथा ने इस्राएल को उनके इर्द गिर्द के जातियों से भिन्न बनाया क्योंकि उनमें से कोई भी इस्राएलियों के समान चौथे वर्ष के फलों को अपने ईश्वर को भेंट नहीं करते थे। इन विधियों ने इस्राएल के समाज में यहोवा की महत्वत्ता को प्रमाणित किया।[23]

तीसरी बात, लैव्यव्यवस्था 19 में, दूसरे अनुच्छेदों के समान, इस्राएलियों को

"लहू के साथ मांस खाने" के लिए मना किया गया था (19:26)। इस आज्ञा को मानने से इस्राएलियों को कुछ स्वास्थ्य लाभ मिल सकता था; या, चूंकि इसको "टोना" और "शुभ व अशुभ मुहुर्त" से संबंधित किया जाता था, तो इसका कुछ धार्मिक निहितार्थ हो सकता था। हो सकता है कि कनानी लोग उन पशुओं का लहू पीते थे जिनको वे अपने देवताओं के लिए बलि करते थे। फिर भी, इस विधि ने - मूसा की व्यवस्था में पाए जाने वाले अन्य भोजन संबंधी निषेधाज्ञा के साथ - इस्राएल को दूसरे से भिन्न जाति बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उनके भोजन संबंधी विधियों के कारण जिनका उन्होंने पालन किया, उनके इतिहास में, इस्राएली लोग भिन्न थे (और वे विचित्र माने गए हैं), उदाहरण के लिए, क्योंकि वे लहू नहीं खाते थे।

चौथी बात, परमेश्वर के लोगों को अपना देह नहीं काटना था या देह में किसी प्रकार का छाप नहीं खुदवाना था (19:27, 28)। यह पूर्तिपूजकों के धार्मिक व्यवहार से संबंधित प्रतीत होता है। (पाठ मुर्दों के लिए "देह काटने को संबोधित करता है।") ऐसा लगता है कि किसी पुरुष की दाढ़ी व बाल की अर्हता भी मूर्तिपूजक रीति रिवाज से संबंधित रहा होगा।

इस्राएलियों ने परमेश्वर द्वारा दिए गए "विधियों" और "नियमों" का पालन किया (19:37), वे भिन्न लोग थे, अन्य लोगों से भिन्न, एक पवित्र देश। इस भिन्नता ने उन्हें कैसे दूसरों को, जो उनके संगति से बाहर थे, प्रेम करने की जिम्मेदारी निभाने में सहायता की?

आधुनिक युग से इस प्रश्न का विशेष संबंधता है। प्राचीन इस्राएलियों के समान, मसीही लोगों को भी, अन्य लोगों से अलग और भिन्न होने के लिए निरंतर चुनौती दी जाती है। कलीसिया में कुछ लोगों का यह मत है कि दूसरों को मसीह के पास लाने के लिए उनको भी संसार की गतिविधियों में शामिल होकर उनके समान होना है। वे कहते हैं, तभी हम कलीसिया के बाहर के लोगों को कलीसिया की गतिविधि और आराधना में हमारे साथ भाग लेने उनमें रूची पैदा कर सकते हैं। इस विचारधारा के साथ एक समस्या है, लोगों को भले कार्य करने के लिए प्रभावित करने के लिए, हमें स्वयं भला होना पड़ेगा। हम उनके पापमय गतिविधि में भाग नहीं ले सकते हैं। हमें नमक और ज्योति बनना है (मत्ती 5:13-16); नमक और ज्योति उनसे भिन्न हैं जिसे वे प्रभावित करते हैं।

सच्चाई यह है कि हमें दूसरों के समान अपने स्तर नीचा (उनके बुरे कार्यों में सहभागी होकर) करने के बजाए, हमको महान प्रेम दिखाना है (ताकि हम उनको बेहत्तर बनने के लिए प्रभावित कर सकें)। इसलिए, प्राचीनकाल के इस्राएलियों के समान, आज मसीहियों को भिन्न और विशिष्ट होने की आवश्यकता है। कैसे? विभिन्न प्रकार के भोजन न खाने से और विभिन्न प्रकार का वस्त्र धारण न करने से। बल्कि हम संसार के सदृश न होकर इससे भिन्न हो सकते हैं (रोमियों 12:1, 2)। हमें अपने आपको "संसार से निष्कलंक रखना है" (याकूब 1:27) और संसार के पापमय चीज़ों से प्रेम नहीं करना है (1 यूहन्ना 2:15, 16)। हमारी भिन्नता हमारे विश्वास में, हमारी आत्मिकता में, और हमारी शुद्धता में स्पष्ट दिखाई देना चाहिए।

यदि हम दूसरे से प्रेम करते हैं तो हम इस भिन्नता को बनाए रखेंगे और कोई दूसरे से कैसे प्रेम करता है और परमेश्वर की आज्ञा मानता है वह भरपूर जीवन का आनंद कैसे उठाता है, का एक अच्छा उदाहरण ठहरेंगे (देखें यूहन्ना 10:10)।

सभी प्रकार के लोगों के साथ भला करना

यह अध्याय यह भी स्पष्ट करता है कि इस्राएलियों को विभिन्न श्रेणियों के लोगों के साथ भला करना था। चूँकि, हमें भी, अपने पड़ोसी से प्रेम रखना है, तो हम इसका अनुमान लगा सकते हैं और परमेश्वर चाहता है कि हमें भी इस मसीही युग में उसी तरह व्यवहार करना चाहिए।

हमारे शत्रु

इस्राएलियों को "अपने मन में एक दूसरे से बैर नहीं करना था," यद्यपि वह उसको "डांट" सकता था (19:17)। एक मसीही को भी शत्रु से बैर नहीं करना है; बल्कि वह उसको यह बताए (उसके भलाई के लिए) कि जो कुछ उसने किया है, वह गलत है। यह इस तरह नहीं करना चाहिए कि "पाप का भार" उठाना पड़े (19:17)। दूसरे को चोट पहुँचाये बिना, उचित दृष्टिकोण के साथ, बदला लिए बिना या अपराधी के विरूद्ध बिना कुड़कुड़ाहट के उसे डांटना चाहिए (19:18)।

कुछ लोगों का मत है कि नया नियम केवल विचारों और दृष्टिकोणों और अभिलाषाओं को ही संबोधित करता है, जबकि पुराना नियम केवल कार्यों को संबोधित करता है। ये आयतें इस प्रकार के विचारों का समर्थन नहीं करते हैं, यहाँ तक कि यह अपने शत्रु से "बैर" करने को भी मना करता है।

हमारे परिवार एवं मित्र

परमेश्वर के लोगों को मेलबलि बलिदान कर अपने परिवार एवं भाइयों के लिए भलाई करने की आज्ञा दी गई थी। लैव्यव्यवस्था 19:5-8 इस प्रकार की भेंट के संबंध में निर्देश देता है। जबकि ये निर्देश यहाँ इस संदर्भ में किसी अन्य उद्देश्य के लिए सम्मिलित किए गए होंगे, लेकिन वे हमें हमारे परिवार व भाइयों के प्रति जिम्मेदारी का स्मरण दिलाते हैं (और इसने इस्राएलियों को भी स्मरण दिलाया होगा)। जब कोई मेलबलि भेंट करता है तो वह अपने परिवार और मित्रों के लिए, मेलबलि के पशु के एक भाग में से संगति के भोज के रूप में, एक साथ भोजन करने का अवसर प्रदान करता है। मसीही होने के नाते, हमें अपनी आशीषें, जो लोग हमारे निकट हैं उनके साथ बांटना चाहिए।

हमारे माता-पिता

इस्राएलियों को 19:3 में कहा गया था, "तुम अपनी-अपनी माता और अपने-अपने पिता का भय मानना।" यह अनुच्छेद दस आज्ञा में से पाँचवीं आज्ञा को दोहराता है। इसमें यह आदेश दिया गया है कि बच्चों को अपने माता-पिता का

"भय" मानना चाहिए या उनका आदर करना चाहिए। आज, जवान बच्चों को अपने माता-पिता के आज्ञाकारी बनने का आदेश दिया गया है (इफि. 6:1)। जब वे बूढ़े हो जाएं तो यहोवा यह चाहता है कि बच्चे अपने बूढ़े माता-पिता की देखभाल करें। जीवन के हर एक पड़ाव में, बच्चों को अपने माता-पिता का आदर और सम्मान करना चाहिए।

बूढ़े लोग

इस्राएलियों को न केवल अपने बूढ़े माता-पिता का, बल्कि सभी बूढ़े लोगों का आदर करना था (19:32)। इस प्रकार के निर्देश की आज अधिक आवश्यकता है। यह आयत बूढ़े लोगों के प्रति आदर को परमेश्वर के भय से संबंधित करता है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जो बूढ़े लोगों का आदर नहीं करते हैं वे परमेश्वर का निरादर करते हैं।

मज़दूर

इस्राएल में नियोक्ताओं को मज़दूरों पर अंधेर नहीं करना था (19:13)। उस समाज में, लोग दैनिक मज़दूरी (दिहाड़ी) पर लगाए जाते थे और दिन के अंत में उनकी मज़दूरी उनको दे दी जाती थी। यदि एक मज़दूर को उसकी मज़दूरी अगले दिन तक नहीं मिलती थी तो हो सकता था कि उसके पास स्वयं या उसके परिवार को उस सांझ को खाने के लिए कुछ भी न हो। आधुनिक युग में, कपटी नियोक्ता अपने मज़दूरों का दुरूपयोग कर सकते हैं; लेकिन जो नियोक्ता अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करता है, वह अपने मज़दूरों के साथ वैसा ही व्यवहार करेगा, जैसा वह स्वयं चाहता है कि लोग उसके साथ वैसा व्यवहार न करें। वह मज़दूर को उसके मज़दूरी के लिए धोखा नहीं देगा।[24]

कानूनी मामले में संलग्न लोग

इस्राएल की कानूनी प्रणाली - कम से कम सार्वजानिक मामलों में - जिसे हम "अनौपचारिक न्यायालय कार्यवाही" कह सकते हैं, संलग्न हो सकता था। यदि किसी को दूसरे से शिकायत है तो वह इस मामले को लोगों के प्राचीनों के सम्मुख रख सकता था, और वे अभियोक्ता और अभियुक्त के बीच न्याय चुकाते थे। इसलिए, कोई भी इस्राएली इन सार्वजनिक मामलों में न्यायाधीश की भूमिका निभा सकता था।

जो न्यायाधीश अपने पड़ोसी को अपने समान प्रेम करता है उसको हर एक फ़ैसला "निष्पक्ष रूप से," अर्थात् पक्षपातपूर्ण रहित तरीके से सुनाना होता था (19:15)। उसको "बड़े और छोटे में भेदभाव" नहीं करना था। घूस एक बड़ी परीक्षा हो सकती थी। फ़िर भी, कानून यह कहता है कि जो व्यक्ति न्याय करता है, उसको "कंगाल का भी पक्ष नहीं लेना था।" जबकि आधुनिक न्यायाधीश "बड़े लोगों के प्रति पक्षपात" करते हैं, और ऐसा प्रतीत होता है मानों वे "दरिद्रों के प्रति भेद

भावपूर्ण रवैया" अपनाते हैं। कुछ परिस्थितियों में, सुविधाहीन समूह में से कोई भी जघन्य अपराध करके यह कहकर बच सकता था कि भूतकाल में उसके लोगों के साथ अन्याय किया गया था। लैव्यव्यवस्था 19 किसी भी चरमसीमा के लिए मना करता है। जब न्यायालय परिदृश्य में न्याय किया जाता है, तो जो पड़ोसी से प्रेम करता है, वह उसकी सामाजिक या आर्थिक स्थिति का ध्यान न रखते हुए, पूर्णतया निष्पक्ष और भेदभाव रहित न्याय सुनाएगा।

दिव्यांग

लैव्यव्यवस्था 19 - और पुराने नियम के अन्य अनुच्छेद - इस बात पर ज़ोर देते हैं कि इस्राएल को उन लोगों की भी चिंता करनी चाहिए जिनकी देखभाल करने के लिए कोई नहीं था। इस अध्याय में असहाय लोगों की एक श्रेणी दिव्यांग है। चौदहवीं आयत की पहेलीनुमा नियम दिव्यांग लोगों का मज़ाक उड़ाना या उनका अपमान करने को मना करता है। किसी बधिर से कठोरता से बोलना या दृष्टिहीन के मार्ग में ठोकर रखना, किसी भी व्यक्ति के लिए दिव्यांगों के प्रति इस प्रकार का व्यवहार शर्म की बात थी। इस प्रकार का अभद्रतापूर्ण व्यवहार उसके अपमान का कारण ठहरेगा, और एक मनुष्य के रूप में उसकी गिनती नहीं होगी। इसलिए, इस प्रकार के कार्य में संलग्न होना तब भी गलत था और अब भी गलत है! "अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखने" का तात्पर्य सबके प्रति प्रेम और सम्मान दिखाना है। मसीही होने के नाते, हमें दिव्यांगों के मनुष्यत्व का सम्मान करना चाहिए; हमें उनको नीचा दिखाने के बजाय, उनकी उन्नति में सहायता करना चाहिए।

दरिद्र

लैव्यव्यवस्था 19:9, 10 में इस्राएलियों को "ज़रूरतमंदों" ("दरिद्र"; NRSV) के लिए क्या करना चाहिए, के बारे में बताया गया है। यह अनुच्छेद यह नहीं बताता है कि "ज़रूरतमंदों" की श्रेणी में कौन आते हैं; लेकिन व्यवस्था की अन्य विधियां, अनाथों और विधवाओं की चिंता करने के बारे में बताता है, क्योंकि उनकी देखभाल करने के लिए कोई नहीं थे। यहाँ "ज़रूरतमंद" की श्रेणी में ये दोनों समूह अवश्य हैं लेकिन यह अनाथों व विधवाओं तक ही सीमित नहीं है। अपने पड़ोसियों को अपने समान प्रेम करने का तात्पर्य था, इस्राएलियों को दरिद्रों की भी चिंता करनी चाहिए थी। नया नियम भी हम पर यही ज़िम्मेदारी डालता है। पौलुस और उसके दल के लोगों को "कंगालों की सुधि लेने के लिए कहा" गया था (गला. 2:10), और याकूब ने "अपने आपको संसार से निष्कलंक" रखने की परिभाषा में "अनाथों और विधवाओं के क्लेशों में सुधि लेने" को सम्मिलित किया (याकूब 1:27)।

यह विधि दरिद्रों की आवश्यकता पूरा करने के लिए था। भूस्वामी को अपने खेतों के कोने तक कटनी नहीं करवाना था, कटनी के बाद खेतों में अनाज की बची

बाली नहीं बीनवाना था, या बाग और दाख की बारी में अपने आप गिरे फलों को भी नहीं उठवाना था। यह सारा अनाज ज़रूरतमंदों की पूर्ति के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए था। कटनी की यह फसल छोड़ना किसानों के लिए भारी पड़ सकता था। लेकिन, दरिद्रों को इस व्यवस्था का लाभ उठाने के लिए खेतों में जाकर परिश्रम करना था। उन्हें घर में यूँ ही बैठकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए दूसरे के आने की प्रतीक्षा नहीं करना चाहिए था। दूसरे की दया द्वारा छोड़े गए अनाज का लाभ उठाने के लिए उन्हें परिश्रम करना था, परंतु जो अपने पड़ोसी को अपने समान प्रेम करते थे उन्हें दरिद्रों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए अपनी भूमिका निभानी थी।

परदेशी

एक दूसरा समूह जिसके प्रति इस्राएलियों को प्रेम दिखाना था वे "परदेशी" थे - यह एक ऐसा शब्द है जो इस्राएलियों के बीच रहने वाले गैर-इस्राएली (अन्यजातियों) को संबोधित करता है। परमेश्वर ने कहा कि खेतों के कोने और अनाज के बालियों का बीनना परदेशियों के साथ-साथ दरिद्रों के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए (19:10)। इस आज्ञा का यह अंदेशा है कि जो परदेशी इस्राएलियों के बीच रहते थे वे भूमि हीन थे और उनके पास जीविका का साधन नहीं हो सकता था। इसलिए, वे दरिद्र हो सकते थे और किसानों द्वारा बिना कटनी के छोड़े हुए खेतों के कोने पर निर्भर रहते थे।

इसके साथ ही, परमेश्वर ने इस्राएलियों को यह आदेश दिया कि वे गैर-इस्राएलियों के साथ जाति भाई जैसा व्यवहार करें: वे उन्हें वैसे ही प्रेम करें जैसे वे अपने लोगों से प्रेम करते थे। इस्राएलियों को उनको प्रेम करने का एक कारण यह था कि वे स्वयं मिस्र देश में "परदेशी" थे। इस्राएलियों के अनुभवों ने उन्हें परदेशी और विदेशियों के प्रति जो उनके बीच रहते थे उदार व विचारवान बना दिया होगा। यहूदियों का परदेशियों को नीचा दिखाने का व्यवहार परमेश्वर की व्यवस्था से उत्पन्न नहीं हुआ होगा। परमेश्वर चाहता है कि हम सब प्रकार के लोगों के प्रति - उनके रंगभेद या राष्ट्रीयता में विभेद किए बिना, चाहे वे धनी या निर्धन हो, प्रेम दिखाएं।

व्यापारी लोग

अंत में, लैव्यव्यवस्था 19, इस्राएलियों के व्यापारिक जीवन को संबोधित करता है। 35वीं और 36वीं आयत में वर्णित विधि ने व्यापारियों को आदेश दिया कि वे लोगों के साथ पारदर्शिता रखें। दूसरे से प्रेम करने का यह अर्थ है कि वे लेनदेन में खराई बरतें - जब वे वस्तु बेचते हैं तब भी और जब वे वस्तु खरीदते हैं तब भी।

इस्राएलियों को अपने सारे व्यापार में बटखरे और परिमाण में पारदर्शिता दिखानी थी। ग्राहकों को धोखा देने के लिए अयथार्थ तौल का प्रयोग करने के लिए व्यवस्था मना करती है। जिसने भी ऐसा किया वह दण्डित किया जाता था। जब भी इस्राएली लोग समान बेचते या खरीदते थे तो उन्हें हर बार ईमानदार और

पारदर्शी होना चाहिए था।

आज हमें अपने सारे लेन-देन - सामाजिक जीवन में, कलीसिया के कार्य में, और व्यापारिक आचरण में ईमानदार होने की आवश्यकता है (रोमियों 12:17; 2 कुरिं. 8:21; 1 पतरस 2:12)। इससे बढ़कर, हमें हमारे व्यापार संचालन में, दूसरे लोगों का भला करने अतिरिक्त प्रयास करने की आवश्यकता है।

ऐसा कहा गया है, "व्यापार का व्यापार, धनोपार्जन है।" संभवतः इस कथन में कुछ सच्चाई हैः कम से कम हम यह कह सकते हैं कि यदि एक व्यक्ति अपने व्यापार के माध्यम से धन उपार्जन नहीं कर रहा है, तो वह इस व्यापार में अधिक दिन तक नहीं टिक सकता है। यद्यपि, लैव्यव्यवस्था 19 स्पष्ट रूप से सीखाता है कि जो व्यापारी दूसरे को अपने समान प्रेम करता है उसका उद्देश्य केवल मुनाफा कमाना ही नहीं है।

इस्राएली किसान या व्यापारी को ऐसे कार्यप्रणाली का अनुमोदन करने के लिए कहा गया है जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि उससे उसका मुनाफा बढ़ने के बजाय घटता हुआ लगता है। (1) उसको अपने फसल का एक भाग दरिद्रों के लिए छोड़ना था। (2) उसको अपने कर्मचारियों को समय पर भुगतान करना था। (3) उसको यह भी सुनिश्चित करना था कि उसका बटखरा और परिमाण ठीक था।

सारांश यह है कि दूसरे से प्रेम करने का तात्पर्य यह नहीं कि आपको दूसरे लोग अच्छे लगते हैं या लोगों को यह कहना कि "आप मुझे पसंद हैं।" दूसरों को अपने समान प्रेम करने का तात्पर्य सभी समूह के लोगों का भला करना हैः हमारे शत्रुओं का, हमारे परिवार के सदस्यों या मित्रों का, हमारे माता-पिता का, बूढ़े लोगों का, कर्मचारियों का, उन लोगों का जिनका न्याय करने के लिए हमारी नियुक्ति की गई है, दिव्यांगों का, उन लोगों का जो हमारे समूह के बाहर के हैं, दरिद्रों का, और उन लोगों का जिनके साथ हमारा दैनिक व्यापार होता है।

उपसंहार

इस्राएल को, "अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करने की" (19:18) आज्ञा दी गई थी। यह एक जाति एंव व्यक्ति के रूप में, जिसे हम दस आज्ञा के रूप में जानते हैं, मानने के लिए उन्हें कहा गया था ताकि वे जातियों के बीच अपनी अलग पहचान बनाकर रख सकें और उनके सम्पर्क में आने वाले हर प्रकार के लोगों की भलाई कर सकें। यदि हम अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम रखेंगे तो उनको हानि पहुँचाने से बचने के लिए, हम परमेश्वर की आज्ञा का पालन करेंगे, हम परमेश्वर के लोगों के रूप में अलग पहचान बनाएंगे और तब हम "सभी लोगों का हर परिस्थिति में भला करेंगे" (गला. 6:10)।

इस तरह दूसरे से प्रेम प्रगट करने की आवश्यकता क्या थी? यहोवा के कारण! हम बार-बार "मैं यहोवा हूँ" का पुनुराचरण पढ़ते हैं। परमेश्वर का इस वक्तव्य से यह अर्थ रहा होगा, "ऐसा करो क्योंकि मैं यहोवा हूँः मुझे आज्ञा देने का अधिकार

है और यदि आज्ञा नहीं मानोगे तो दण्डित किए जाओगे।" इसकी अधिक संभावना यह है, वह कह रहा है, "ऐसा करो क्योंकि जो मैं हूँ सो हूँ। मैं पवित्र यहोवा हूँ। मैं स्नेह से सभी मानवजाति के लिए कार्य करता हूँ। इसलिए, तुम, मेरे पवित्र लोग, मानवजाति के साथ स्नेह से व्यवहार करना ताकि वे भी जानें कि मैं प्रेमी परमेश्वर हूँ।" जब हम अपने पड़ोसी से अपने समान प्रेम करते हैं तो लोगों को हमारा प्रेम दिखाई देना चाहिए और वे परमेश्वर के प्रेम के बारे में कुछ जानें। हमें कितनी अदभुत ज़िम्मेदारी दी गई है - कि परमेश्वर के प्रेम को हम अपने जीवन के द्वारा दिखाएं।

कोय डी. रोपर

समाप्ति नोट्स

[1]अध्याय 19 की संरचना के संबंध में आर. के. हैरीसन ने लिखा, "यद्यपि इस अनुभाग में विभिन्न नैतिक, वैधानिक, धार्मिक रीति रिवाज और आत्मिक नियम का संयोजन इस तरह किया गया है ताकि ऐसा जान पड़े कि ये अव्यवस्थित है, लेकिन वास्तव में ये सोलह विशिष्ट अनुच्छेदों में व्यवस्थित किए गए हैं, जो *मैं (तुम्हारा परमेश्वर) यहोवा हूँ* वाक्यांश के साथ समाप्त होता है। ये अनुच्छेद चार के, चार, और आठ खण्डों के तीन प्रमुख भागों में बांटा गया है (2-10; 11-18; 19-37)। (आर. के. हैरीसन, *लैव्यव्यवस्था*, द टिंडेल ओल्ड टेस्टामेंट कमेंट्रीज [डॉनर्स ग्रूव, इलनॉइसः इण्टर-वर्सिटी प्रेस, 1980], 195). देखें गॉर्डन जे. वेनहैम, *द बुक आफ लैव्यव्यवस्था*, द न्यू इंटरनेशनल कमेंट्री आन द ओल्ड टेस्टामेंट (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: विलियम बी. एर्डमैंस पब्लिशिंग कम्पनी, 1979), 263-64. [2]उदाहरण के लिए यह व्यवस्था बटोरने से कैसे संबंधित है, देखें रूत 2. [3]जॉर्ज ए. एफ. नाईट, *लैव्यव्यवस्था*, द डेली स्टडी बाइबल (फिलाडेलफियाः वेस्टमिंस्टर प्रेस, 1981), 119. [4] कोय डी. रोपर, *निर्गमन*, ट्रुथ फ़ॉर टुडे कमेन्ट्री (सर्ची, आर्क.: रिसोर्स पब्लिकेशन्स, 2008) 327. [5]क्लायड एम. बुड्स, *लैव्यव्यवस्था - गिनती - व्यवस्थाविवरण*, द लिर्विंग वे कमेंट्री आन द ओल्ड टेस्टामेंट, खण्ड 2 (श्रेवपोर्ट, लुसियानाः लेम्बर्ट बुक हाऊस, 1974), 47. [6]इस आयत में "विरूद्ध कार्य करना" का शाब्दिक अर्थ "विरोधी" होना है। "खड़े होना" या "विरोधी होना" के लिए इब्रानी शब्द עָמַד *(आमद)* है। [7]हैरीसन, 198-99. जॉन एच. हेज के सुझाव के अनुसार, पिछली आयत की भांति, यह एक वैधानिक परिस्थिति पर लागू होता है और इसका यह अर्थ है कि एक इस्राएली को "मूकदर्शक बनकर खड़ा नहीं रहना चाहिए था जब उसके पास उसके पड़ोसी को मृत्युदण्ड से बचाने के लिए पर्याप्त प्रमाण है (आयत 16; देखें 5:1)" (जॉन एच. हेस, "लैव्यव्यवस्था," इन *हार्पर्स बाइबल कॉमेंटरी*, एड. जेम्स एल. मेयज [सैन फ्रांसिस्को: हार्पर एण्ड रो, 1988], 173)। [8]जेकब मिलग्रोम, "द बुक आफ लैव्यव्यवस्था," *दि इंटरप्रेटर्स वन - वोल्यूम कमेंट्री आन द बाइबल*, सम्पादक चार्ल्स एम. लेमन (नैशविलः अर्बिंगदन प्रेस, 1971), 79. [9]"आँख के बदले आँख" का विस्तृत विश्लेषण रोपर, 354-57 में दिया गया है। [10]आर. लैयर्ड हैरिस, "लेवीटीकस," *दि एक्सपोजीटर्स बाइबल कमेंट्री,* खण्ड 2, *उत्पत्ति - गिनती*, सम्पादक फ्रैंक ई. गैबेलीन (ग्रैंड रैपिड्स, मिशिगन: जॉडरवैन पब्लिशिंग हाऊस, 1990), 606-7.

[11]एक पुरुष का दासी के साथ यौन संबंध स्थापित करने को व्यभिचार (दूसरे के पत्नी के साथ यौन संबंध बनाना) के समान नहीं माना गया है। [12]"मना" (עָרַל, *आरेल)* करने के लिए जिस इब्रानी शब्द का अनुवाद किया गया है उसका शाब्दिक अर्थ "खतनारहित" है। [13]प्राचीन बाबूल की नियमावली के अनुसार एक बाग लगाने में लगभग चार वर्ष का समय लगता था। (*हम्मूराबी कोड* 60.) [14]इस अनुच्छेद के संदर्भ में वारेन डब्ल्यु. वीर्यसबी ने लिखा, "चौथे वर्ष तक फल और अच्छे होते थे, यह वृक्ष लगाने के पश्चात् तीसरा फसल होता; यह परमेश्वर का है। प्रथम फल सदैव उसका

होना चाहिए (नीतिवचन 3:9-10)" (वारेन डब्ल्यु. वीर्यसबी, *बी होली* [व्हीटन, इलनॉयसः विक्टर बुक्स, 1994], 87)। [15]वेनहैम, 271. [16]इस आयत के बारे में वेनहैम ने लिखा, "पवित्रता के लिए मनुष्य का सम्पूर्ण पवित्रीकरण और परमेश्वर की सेवा के प्रति परिश्रम करने की आवश्यकता है। यह सात में से एक दिन, उपज का दसवांश और कृषि का प्रथम फल परमेश्वर को देने के द्वारा सांकेतिक रूप से दर्शाया गया है। यह सिद्धांत न केवल फसल पर (निर्गमन 23:19; लैव्य. 23:10; व्यव. 26:1 से आगे) बल्कि पशुओं (निर्गमन 34:19-20; व्यव. 15:19) और बच्चों पर भी लागू होता है (निर्गमन 13:2; गिनती 8:16 से आगे)। पुरानी वाचा के लोग अपनी सभी चीज़ों के प्रथम फल परमेश्वर को समर्पण करने के द्वारा खुलेआम यह घोषणा करते थे कि जो कुछ उनके पास है वह परमेश्वर का ही दिया हुआ है और वह उसके आशीषों के लिए उसको धन्यवाद देता है (1 इतिहास 29:14)" (उपरोक्त)। [17]"मुर्दों के लिए" मूर्तिपूजकों की आराधना विधि जान पड़ती है जो मरे हुए व्यक्ति की सहायता या शुभकानाएं या दिशा निर्देशन जान पड़ता है। [18]हैरीसन ने कहा, "भौंह और दाढ़ी का बाल मुंडवाना ... , या चमड़ी पर छाप बनवाना, मूर्तिपूजक विलाप का एक प्रतिरूप है और इस प्रकार का अभ्यास करने के लिए [इस्राएलियों को] मना किया गया था। चमड़े का रूप बिगाड़ना, जिसमें संभवतः किसी प्रकार के देवी देवताओं के चित्र खोदे जाते थे, एक व्यक्ति में ईश्वरीय स्वरूप का निरादर करना था और ऐसा करने के लिए मना किया गया था क्योंकि इसमें परमेश्वर की पवित्रता नहीं दिखाई देती थी (देखें व्यव. 14:1-2)" (हैरीसन, 201)। [19]उदाहरण के लिए, 19:9, 10 में बताए गए विधियां (खेत की कोने तक कटनी नहीं करना और दाख की बारी को पूरी तरह नहीं बिनना) यह बताती है कि दरिद्र और ज़रूरतमंद के प्रति किसी को कैसे बर्ताव करना चाहिए। (नाइट, 119.) [20]यह आज्ञा मत्ती 19:19; 22:39; मरकुस 12:31, 33; लूका 10:27; रोमियों 13:9; गला. 5:14; याकूब 2:8 में उल्लेखित है।

[21]लैव्यव्यवस्था 19 में वर्णित टोना और शुभ व अशुभ मुहुर्त से संबंधित विधियों को भी पहली और दूसरी आज्ञा से जोड़ा जा सकता है (देखें 19:26, 31)। [22]हैरीसन ने लैव्यव्यवस्था 19:19-37 की व्याख्या यह कहकर की, "मण्डली की पवित्रता और शुद्धता को, अलग किए गए के सिद्धांत, जो ईश्वरीय विधियों से परिष्कृत है, के मानने के द्वारा बढ़ावा देना था।" उन्होंने यह भी कहा, "चुने हुए लोग परमेश्वर के विशेष सम्पत्ति होने के लिए दूसरे जातियों से निकाले गए हैं, और यदि उनको अपने भविष्य की पूर्ति करनी है तो उनके लिए यह अनिवार्य था कि वे अपनी आत्मिक, नैतिक और सामाजिक भिन्नता बनाये रखें" (हैरीसन, 199-200)। [23]लैव्यव्यवस्था 19 की अन्य विधियां भी इस्राएल की विशिष्टता के बारे में बताती हैं। विश्रामदिन और पवित्र स्थान की अर्हता, टोना और शुभ व अशुभ मुहुर्त न मानने से संबंधित विधियां, मेलबलि से संबंधित नियम, और यह विधि कि इस्राएलियों को अपने पुत्रियों को वेश्या नहीं बनाना है का उदाहरण उनको विशिष्ट बनाता है। वस्तुतः, इस अध्याय में पाये जाने वाले सभी विधियां इस्राएलियों को अन्य जातियों से भिन्न बनाने में महत्वपूर्ण योगादान करती है। [24]यह इसलिए ऐसा हो सकता है क्योंकि आयत 13 का दूसरा भाग इस आयत के प्रथम भाग का विश्लेषण करने के लिए अभिप्रेत होगा। अर्थात् एक मज़दूर को उसकी मज़दूरी के लिए धोखा देने का तात्पर्य पड़ोसी को सताना या लूटना है।